सार्थक जीवन जीना एक तप

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जीवन का अर्थ है जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव के द्वारा जो क्रियाकलाप किया जाता हैं, वह जीवन कहलाता है। सार्थक का अर्थ है ऐसा जीवन जो स्वयं को आनन्द दे और दूसरों को भी आनन्द दें। सार्थक जीवन प्राप्त मन, वचन, काया से सभी प्राणियों के प्रति विधायक भाव रखता है, जो दूसरों के आंसू पोंछता है ईश्वर उसके आंखों में कभी आंसू नहीं आने देता जीवन के लिए अर्थाजन करना एक अच्छी बात है। सामाजिक जीवन की यह आवश्यकता है। किन्तु लालसापूर्ण जीवन जीना निरर्थक है। अपना जीवन जीने के साथ–साथ दूसरों को किसी प्रकार का कष्ट न हो यह ध्यान देना आवश्यक है। कम से कम आवश्यकता में जीवन जीना ठीक है। अधिक संग्रह करके, आवश्यकता से अधिक संग्रह करने में दूसरों का हक हम छीनते है। प्रकृति ने सबको समान अधिकार प्रदान किया है। तप जीवन का श्रृंगार है। तपस्या पापों, दोषों और बुराईयों को जलाकर नष्ट कर देती है। तप आत्मसंयम है। लोभ को तप से नष्ट किया जा सकता है। इच्छा आकाश के सामान अनन्त है। इच्छाओं पर नियन्त्रण रखना चाहिए। ईच्छाओं को कभी भी पूरा नहीं किया जा सकता। एक इच्छा पूरी हुई दूसरी उससे बड़ी इच्छा तैयार रहती है। मानव का जीवन तप युक्त होना चाहिए। चरित्र की रक्षा करनी चाहिए। आडम्बर या दिखावा करना तप नहीं है। दरिद्र नारायण की सेवा करना एक तप है। हिन्दुस्तान में बहुत से लोग अभावग्रस्त जीवन व्यतीत कर रहे है। उनके जीवन को सार्थक बनाना सबसे बड़ा तप है। लोगों की मदद करना सबसे बड़ी सेवा है। तप मानव जीवन का श्रृंगार है। चारित्र भी जीवन का श्रृंगार है। मानव जीवन का श्रृंगार आभूषण नहीं है। आभूषण केवल बाहरी चमक–दमक है। यह बाहरी श्रृंगार है। जीवन को उत्कर्ष पर पहुंचाने वाला आभ्यन्तर श्रृंगार तप है। सादा जीवन उच्च विचार मानव जीवन का श्रृंगार यह कहावत तप को ही ध्यान में रखकर कही गयी है। तपस्या को साधना का अपरिहार्य अंग माना गया है।

तपस्या का अर्थ काय–क्लेश या उपवास ही नहीं है, बल्कि स्वाध्याय, ध्यान, विनय आदि सब तपस्या के विभाग हैं। तपस्या मोक्ष का मार्ग है, उससे तपस्वी मोक्ष की ओर गति करता है। प्रत्येक संसारी जीव प्रतिक्षण कुछ न कुछ प्रवृत्ति सदैव करता है। जब उसकी प्रवृत्ति रुक जाती है तब वह मुक्त हो जाता है। जहां प्रवृत्ति है, वहां कर्म पुद्गलों का आकर्षण और निर्जरण होता है। प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है– शुभ और अशुभ। शुभ प्रवृत्ति से अशुभ कर्मों का निर्जरण और शुभकर्म का बन्ध होता है। अशुभ प्रवृत्ति से अशुभ कर्मों का बन्ध होता है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप से संयम होता है तथा इसका समागम होने पर जीव को मोक्ष मिलता है। आत्मा ज्ञान से जीवादि भावों को जानता है, दर्शन से उसका श्रद्धान करता है, चारित्र से कर्मास्रव का निरोध करता है और तप से विशुद्ध होता है। सर्व दुःखों से मुक्त होने के लिए तपस्वी संयम और तप से पूर्वकर्मों का क्षय करके मुक्ति प्राप्त करते हैं। तप कर्मों की निर्जरा और आत्मविशुद्धि का सर्वोत्कृष्ट साधन है। जो ज्ञानावरणादि आठ प्रकार की कर्म ग्रन्थि को तपाता है, जलाता है, नाश करता है, वह तप है। वासना या इच्छा का निरोध करना भी तप कहलाता है।

बाह्य या आभ्यन्तर जितने भी तप हैं उनका आचरण इह लौकिक तथा पारलौकिक नामना, कामना या वासना से रहित होकर केवल निर्जरा की दृष्टि से करना ही धर्म है। जैसे अग्नि हवा के द्वारा तृण और काष्ठादि को जलाती है वैसे ही ज्ञानरूपी हवा से युक्त शील, समाधि और संयम से प्रज्वलित तप रूपी अग्नि संसार रूपी बीज को जलाती है। तपस्या को आत्मशुद्धि का साधन और कर्मों की निर्जरा का हेतु बताया गया है। मुक्ति व शान्ति प्राप्त करने में तप की महती भूमिका होती है। तप के मुख्य दो भेद हैं– बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य तप अध्ययन आदि कारणों से बाह्य तप कहलाता है। इसमें बाहरी द्रव्यों की अपेक्षा होती है, अशन, पान आदि द्रव्यों का त्याग होता है। ये सर्वसाधारण के द्वारा तपस्या के रूप में स्वीकृत होते हैं। इनका प्रत्यक्ष प्रभाव शरीर पर अधिक होता है। ये मुक्ति के बहिरंग कारण होते हैं। जिसके आचारण से मन दुष्कृत के प्रति प्रवृत्त न हो, आन्तरिक तप के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो और पूर्व गृहीत योगों–स्वाध्याय आदि योगों या व्रत विशेषों की हानि न हो, वह बाह्य तप है। बाह्य तप के द्वारा मानव अपने तन और मन को सहिष्णु बना लेता है। बाह्य तप से

सुखशीलता छूट जाती है, क्योंकि सुखशीलता राग को उत्पन्न करती है। उसको छोड़ने का उपाय है शरीर को कृश करना। इसलिये बाह्य तप किया जाता है। अनशन, अवमौदर्य, भिक्षाचर्या या वृत्ति संक्षेप, रस–परित्याग, काय क्लेश, प्रतिसंलीनता अथवा विविक्त शयनासन बाह्य तप हैं। संसाराभिमुख आत्मा को विषय कषाय से हटाकर अन्तर्मुखी बनाना और उसके लिये प्रबल प्रयास करना प्रतिसंलीनता तप है। जिनमें बाह्य द्रव्यों की अपेक्षा न रहे, जो अन्तःकरण के व्यापार से होते हैं, जिनमें अन्तरंग परिणामों की मुख्यता रहती है, जो स्वसंवेद्य हों, जिनसे मन का नियमन होता हो, जो विशिष्ट व्यक्तियों के द्वारा तप रूप में स्वीकृत होते हों और जो मुक्ति के अन्तरंग कारण हों, वे आभ्यन्तर तप हैं। आभ्यन्तर तप शुभ और शुद्ध परिणामों से युक्त होता है। इसके बिना अकेला बाह्यतप पूर्ण कर्म निर्जरा करने में असमर्थ है। आभ्यन्तर तप के छह भेद हैं– प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और उत्सर्ग।